
THE LAST
LIGHT ON

दहलीज़ 11
आख़िरी जलता दीया

जीवित बचे रहने और खड़े रहने में एक गहरा फ़र्क़ है।

जीवित बचना एक सहजवृत्ति है।

खड़ा रहना एक चुनाव है।

बहुत से लोग सोचते हैं कि ये दोनों चीज़ें एक ही हैं।

यह सच नहीं है।

एक आदमी किसी तूफ़ान से बच निकल सकता है और बाक़ी पूरा जीवन अपने ही मलबे पर पड़ा रहकर बिता सकता है।

दूसरा उसी तूफ़ान को पार कर सकता है, जो बचा है उसे समेट सकता है, और आगे चलते रहने का फ़ैसला कर सकता है।

फ़र्क़ घाव में नहीं है।

फ़र्क़ मुद्रा में है।

लंबे समय तक मैं मानता रहा कि जीवन नतीजों का मामला है।

फिर परीक्षाएँ आईं।

और मैंने पाया कि जीवन सबसे बढ़कर सहनशक्ति का मामला था।

नैतिक सहनशक्ति।

भावनात्मक सहनशक्ति।

मानवीय सहनशक्ति।

कुछ साल ऐसे होते हैं जिनमें सब कुछ साथ देता लगता है।

लोग आते हैं।

अवसर बढ़ते हैं।

परियोजनाएँ विकसित होती हैं।

भविष्य का चेहरा भी दोस्ताना लगता है।

फिर दूसरे साल आते हैं।

अलग साल।

ऐसे साल जो यह नहीं पूछते कि तुम क्या चाहते हो।

ऐसे साल जो पूछते हैं कि तुम क्या सह सकते हो।

ये वे साल हैं जो तस्वीरों में नहीं दिखते।

वे साल जिनका कोई जश्न नहीं मनाता।

वे साल जिनमें मुख्य काम बस चलते रहना बन जाता है।

मैंने सीखा कि हर इंसान में टूटने का एक काल्पनिक बिंदु होता है।

एक सीमा, जो वह अपने आप से कहता है।

“अगर ऐसा हुआ, तो मैं सह नहीं पाऊँगा।”

“अगर मैंने वह खो दिया, तो सब ख़त्म हो जाएगा।”

“अगर वह परीक्षा आई, तो मैं ढह जाऊँगा।”

मैं भी ऐसा ही सोचता था।

फिर जीवन, अपनी सामान्य विडंबना के साथ, उसे परखने का फ़ैसला करता है।

और अक्सर हम एक चौंकाने वाली बात पाते हैं।

हम जितना सोचते थे उससे कहीं अधिक सहनशील हैं।

अधिक ताक़तवर नहीं।

अधिक सहनशील।

ताक़त नायकों की होती है।

सहनशीलता सामान्य लोगों की होती है।

उनकी, जो सुबह उठते हैं।

उनकी, जो काम करते रहते हैं।

उनकी, जो डॉक्टरों के पास जाने का सामना करते हैं।

बिलों का।

ज़िम्मेदारियों का।

अनुपस्थितियों का।

डरों का।

और फिर भी आगे बढ़ने का रास्ता ढूँढ़ लेते हैं।

वही जीवित बचे रहने के असली विशेषज्ञ हैं।

अपने जीवन के दौरान मैं ऐसे लोगों से मिला जिनके पास हार मान लेने के बेहतरीन कारण थे।

उनके पास ऐसे कारण मुझसे कहीं ज़्यादा थे।

और फिर भी वे चलते रहे।

इसलिए नहीं कि वे आशावादी थे।

इसलिए नहीं कि वे भोले थे।

इसलिए नहीं कि वे दर्द को अनदेखा करते थे।

वे इसलिए चलते रहे क्योंकि कोई उन पर निर्भर था।

एक बेटी।

एक बेटा।

एक माँ।

एक पति।

एक पत्नी।

एक दोस्त।

एक समुदाय।

कर्तव्य, कभी-कभी, ऐसी ताक़त पैदा करता है जो अकेले चरित्र के पास नहीं होती।

जब तुम केवल अपने लिए नहीं जीते, तो तुम अधिक सहनशील बन जाते हो।

अधिक ख़ुश नहीं।

अधिक अभेद्य नहीं।

अधिक सहनशील।

जीवन में एक बिंदु आता है जहाँ तुम ख़ुद से यह पूछना छोड़ देते हो:

“यह मेरे साथ क्यों हो रहा है?”

और ख़ुद से यह पूछना शुरू करते हो:

“अब मुझे क्या करना चाहिए?”

जब यह रूपांतरण होता है, तो कुछ बदल जाता है।

दुख ग़ायब नहीं होता।

पर वह मुख्य भूमिका खो देता है।

मंच फिर से कर्म का हो जाता है।

वर्तमान का।

अगले क़दम का।

तय किए गए रास्ते को देखते हुए मुझे एहसास होता है कि निर्णायक क्षण बड़ी जीतों के नहीं थे।

वे बड़ी सहनशक्ति के क्षण थे।

वे दिन जब मैं थका हुआ था।

वे दिन जब मैं डरा हुआ था।

वे दिन जब हार मान लेने पर कोई मुझे दोष नहीं दे सकता था।

और फिर भी, किसी तरह, मैं चलता रहा।

हमेशा अच्छी तरह नहीं।

हमेशा शालीनता से नहीं।

हमेशा साहस से नहीं।

पर मैं चलता रहा।

आज मुझे परिपूर्ण कहानियों पर भरोसा नहीं है।

मुझे उन लोगों पर भरोसा नहीं जो दावा करते हैं कि उन्हें कभी संदेह नहीं हुआ।

मुझे बिना दरारों वाली जीवनियों पर भरोसा नहीं।

एक सरल कारण से।

वे होती ही नहीं।

हर इंसान अपने भीतर अदृश्य लड़ाइयों का एक संग्रह लिए चलता है।

कुछ जीती हुईं।

कुछ हारी हुईं।

कुछ अब भी जारी।

परिपक्वता उन्हें मिटा देने में नहीं है।

वह उनके साथ जीना सीखने में है।

समय के साथ मैंने एक और बात समझी।

घावों के निशान ताक़त के विपरीत नहीं होते।

वे उसके अस्तित्व का प्रमाण होते हैं।

कोई भी बिना निशानों के दूर तक नहीं पहुँचता।

कोई भी रास्ते में कुछ छोड़े बिना सचमुच समय को पार नहीं करता।

सवाल यह नहीं है कि हम घायल होंगे या नहीं।

सवाल यह है कि उसके बाद हम क्या करेंगे।

क्या हम ख़ुद को बंद कर लेंगे?

क्या हम कड़वे हो जाएँगे?

क्या हम दुनिया के न्यायाधीश बन जाएँगे?

या हम सब कुछ के बावजूद इंसानों पर विश्वास करते रहेंगे?

मेरे लिए यही सबसे कठिन परीक्षा थी।

जीते रहना नहीं।

भरोसा करते रहना।

उम्मीद करते रहना।

निर्माण करते रहना।

प्रेम करते रहना।

खुले रहने से कहीं आसान है अपना बचाव करना।

दूसरों के लिए उपलब्ध रहने से कहीं आसान है निंदक बन जाना।

आगे बढ़ते रहने से कहीं आसान है पीछे हट जाना।

और फिर भी, सबसे अच्छा जीवन जो मैंने जाना है, वह हमेशा डर के दूसरी ओर रहा है।

शायद यही खड़े रहने का प्रामाणिक अर्थ है।

अभेद्य होना नहीं।

अजेय होना नहीं।

पूर्ण होना नहीं।

बल्कि घावों को यह तय न करने देना कि हम कौन बनेंगे।

पीछे मुड़कर देखता हूँ तो मुझे ऐसा आदमी नहीं दिखता जो तूफ़ानों से बचता रहा।

मुझे ऐसा आदमी दिखता है जिसने उन्हें पार किया।

कुछ को अच्छी तरह।

कुछ को बुरी तरह।

कुछ में अपने ही टुकड़े छोड़ते हुए।

पर उन्हें पार करते हुए।

आख़िर में, मुझे लगता है कि हर अस्तित्व का फ़ैसला एक ही सवाल से होता है।

यह नहीं कि तुम कितनी ऊँचाई तक चढ़े।

यह नहीं कि तुम्हारे पास कितना था।

यह नहीं कि तुम्हारी कितनी वाहवाही हुई।

बल्कि यह कि जब बाक़ी सब छिन गया तो क्या बचा।

मैं अपना जवाब जानता हूँ।

यह कोई वीरतापूर्ण जवाब नहीं है।

यह कोई असाधारण जवाब नहीं है।

यह एक मानवीय जवाब है।

नुक़सानों के बाद।

ग़लतियों के बाद।

बीमारियों के बाद।

बिछड़नों के बाद।

डरों के बाद।

समय के बाद।

मैं अब भी यहाँ हूँ।

अब भी खड़ा।